Women in Jataka Narratives: An Analysis

Sweta Kumari
Ph.D. Scholar, Dr. B. A. K. Buddhist Studies Centre
Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya, Wardha, Maharashtra – 442001

Abstract

Jataka narratives are a significant genre of Buddhist literature in which moral, social, and religious values are communicated through stories of the Buddha's past lives. Although the primary objective of the Jatakas is to establish Buddhist ideals such as compassion (karuna), charity (dana), morality (shila), forgiveness (kshama), and truth (satya), these stories also clearly reflect the reality, mentality, and structural limitations of the contemporary society. Specifically in the context of women, Jataka literature exposes the patriarchal mindset of ancient Indian society, its apprehensions regarding women, and its moral expectations. In Jataka narratives, women appear in various forms—as mothers, wives, queens, courtesans, ascetics, celestial nymphs (apsaras), or virtuous women. This dualistic portrayal of women is not accidental but is the result of the patriarchal structure of contemporary society, the ascetic-centric religious view, the insecurity of the male mind, and narrative strategies for moral instruction. The objective of the present research paper is to analyze the status, role, and evaluation of women in Jataka narratives.

Keywords: Jataka Narratives, Buddhist Literature, Women's Status, Ancient Indian Society, Patriarchy, Moral Values, Dualistic Portrayal, Gender Analysis, Historical Source, Feminist Discourse.

जातक आख्यानों में महिलाएँ : एक विश्लेषण

स्वेता कुमारी
पीएच.डी. शोधार्थी
डॉ. भ. आ. कौ. बौद्ध अध्ययन केन्द्र, म. गा. अ. हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा, महाराष्ट्र - 442001

भूमिका (परिचय)

जातक आख्यान बौद्ध साहित्य की वह महत्त्वपूर्ण विधा हैं, जिनमें बुद्ध के पूर्वजन्मों की कथाओं के माध्यम से नैतिक, सामाजिक और धार्मिक मूल्यों का सम्प्रेषण किया गया है। यद्यपि जातकों का प्राथमिक उद्देश्य करुणा, दान, शील, क्षमा और सत्य जैसे बौद्ध आदर्शों की स्थापना करना है, तथापि इन कथाओं में तत्कालीन समाज का यथार्थ, उसकी मानसिकता और संरचनात्मक सीमाएँ भी स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होती हैं। विशेष रूप से स्त्रियों के सन्दर्भ में जातक साहित्य प्राचीन भारतीय समाज की पितृसत्तात्मक सोच, स्त्री के प्रति आशंकाओं तथा नैतिक अपेक्षाओं को उजागर करता है।

प्राचीन भारतीय समाज में नारी की स्थिति स्थिर न होकर निरन्तर परिवर्तनशील रही है। ऋग्वैदिक काल में जहाँ स्त्रियों को शिक्षा, वैदिक अध्ययन और धार्मिक कर्मकाण्डों में सहभागिता का अधिकार प्राप्त था, वहीं उत्तरवैदिक काल में पितृसत्तात्मक व्यवस्था के सुदृढ़ होने के साथ स्त्री की स्वतन्त्रता में क्रमशः ह्रास होता गया। बौद्ध काल में बुद्ध द्वारा भिक्षुणी सङ्घ की स्थापना ने नारी के आध्यात्मिक उत्थान के द्वार अवश्य खोले, किन्तु सामाजिक और मानसिक स्तर पर स्त्री के प्रति समानतामूलक दृष्टि पूर्णतः विकसित नहीं हो सकी। इसी द्वन्दपूर्ण पृष्ठभूमि में जातक साहित्य का सृजन हुआ।

जातक आख्यानों में स्त्रियाँ विभिन्न रूपों में उपस्थित होती हैं- माता, पत्नी, रानी, वेश्या, तपस्विनी, अप्सरा अथवा साध्वी के रूप में। कहीं वे शील, त्याग और करुणा की मूर्ति बनती हैं, तो कहीं उन्हें चंचल, लोभी, कपटी और पुरुष-विनाश की प्रेरक शक्ति के रूप में चित्रित किया जाता है। यह द्वैधात्मक स्त्री-चित्रण आकस्मिक न होकर तत्कालीन समाज की पितृसत्तात्मक संरचना, संन्यास-केन्द्रित धार्मिक दृष्टि, पुरुष-मन की असुरक्षा तथा नैतिक शिक्षण की कथात्मक रणनीतियों का परिणाम है।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य जातक आख्यानों में स्त्रियों की स्थिति, भूमिका और मूल्याङ्कन का विश्लेषण करना है। इसमें यह समझने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार जातक साहित्य स्त्री को नैतिक आदर्श और नैतिक संकट दोनों के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करता है। साथ ही यह भी विवेचित किया गया है कि यह स्त्री-चित्रण तत्कालीन सामाजिक यथार्थ का प्रतिबिंब होने के साथ-साथ आधुनिक नारी-विमर्श के लिए एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत क्यों बन जाता है। इस अध्ययन के माध्यम से जातक साहित्य में नारी के प्रति दृष्टिकोण की बहुआयामिता, द्वन्द्वात्मकता और उसकी सीमाओं को स्पष्ट करना ही इस शोध का मूल लक्ष्य है।

प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी की स्थिति

भारतीय समाज के इतिहास में नारी की स्थिति निरन्तर परिवर्तनशील रही है। समय के साथ उसकी भूमिका, अधिकार और कर्तव्यों में बदलाव आया। ऋग्वैदिक साहित्य से लेकर उत्तरवैदिक और फिर बौद्ध साहित्य तक में नारी के प्रति दृष्टिकोण में गहरे उतार-चढ़ाव देखने को मिलते हैं। कभी उसे परिवार और समाज की धुरी माना गया तो कभी केवल पुरुष की अधीनता में जीवन-यापन करने वाली वस्तु। इस खण्ड में हम वैदिक, उत्तरवैदिक और बौद्ध साहित्य में नारी की स्थिति का विवेचन करेंगे ताकि जातक साहित्य में स्त्री-चित्रण की पृष्ठभूमि स्पष्ट हो सके।

ऋग्वैदिक साहित्य में नारी

ऋग्वैदिक समाज में स्त्रियों को अपेक्षाकृत स्वतन्त्र और सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। वे न केवल घर-परिवार की देखभाल करती थीं, बल्कि वेदाध्ययन, यज्ञों में भागीदारी और गोष्ठियों में विचार-विमर्श करने में भी सक्षम थीं। कई स्त्रियों ने ऋग्वेद में ऋचाएँ रचीं, जिनमें घोषा, अपाला, लोपामुद्रा, विश्ववारा आदि का उल्लेख मिलता है।[1] इस काल में न तो पर्दा-प्रथा थी और न ही स्त्रियों को शिक्षा से वंचित किया गया। विवाह संस्कार में स्त्रियों की स्वतन्त्र भूमिका और पत्नी का पति के यज्ञ में सहधर्मिणी के रूप में स्थान उनके सम्मानजनक दर्जे का प्रमाण है।[2] स्त्री-पुरुष के बीच समानता की भावना ऋग्वैदिक समाज में स्पष्ट दिखाई देती है। इस युग की नारी समाज की सक्रिय सहभागी थी।

उत्तरवैदिक साहित्य में नारी

उत्तरवैदिक काल आते-आते नारी की स्थिति में अवनति प्रारम्भ हो गई। पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था अधिक मजबूत हुई और स्त्रियों पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगाए गए। स्त्रियों की शिक्षा पर रोक लगाई गई और वेदाध्ययन से वंचित कर दिया गया। उनके लिए शुद्ध घरेलू जीवन ही अपेक्षित माना गया। इस काल में बहुपत्नी-प्रथा, वेश्यावृत्ति और पर्दा-प्रथा जैसी कुरीतियों ने भी जन्म लिया।[3]

मनुस्मृति जैसी ग्रन्थों में स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट दिखाई देता है- "पिता उसकी रक्षा बाल्यावस्था में करे, पति युवावस्था में और पुत्र वृद्धावस्था में; स्त्री को कभी स्वतन्त्रता नहीं दी जानी चाहिए"[4]। यह कथन नारी की पराधीनता और उसके अधिकार-ह्रास का परिचायक है। हालांकि मनुस्मृति के एक मन्त्र में कहा गया है- "जहाँ स्त्रियों को सम्मान दिया जाता है, वहाँ देवता प्रसन्न होते हैं"[5]। इस प्रकार के कुछेक उद्धरणों को दर्शाकर उत्तरवैदिक-कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति श्रेष्ठ दिखाने का प्रयास किया जाता है परन्तु ध्यातव्य है कि उत्तरवैदिक साहित्य इस प्रकार के उद्धरण अत्यल्प अथवा न के बराबर प्राप्त होते हैं।

बौद्ध साहित्य में नारी

उत्तरवैदिक समाज की इसी परम्परा में बुद्ध का आविर्भाव हुआ। बुद्ध ने नारी के लिए आध्यात्मिक उत्थान के द्वार खोले। उन्होंने महापजापति गोतमी के आग्रह पर भिक्षुणी सङ्घ की स्थापना की, जो नारी के लिए आध्यात्मिक समानता की दिशा में क्रान्तिकारी कदम था।[6]

बौद्ध साहित्य से ज्ञात होता है कि कई स्त्रियाँ न केवल सङ्घ में प्रविष्ट हुईं, बल्कि उन्होंने उच्चतम आध्यात्मिक उपलब्धियाँ भी प्राप्त कीं। खेमा, किसागोतमी, पटाचारा, भद्दा, कुंडलकेसा जैसी अनेक स्त्रियों ने अर्हतत्त्व प्राप्त किया।[7] इससे स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म ने स्त्रियों को केवल गृहस्थ जीवन तक सीमित न रखकर उन्हें मोक्ष मार्ग पर भी चलने का अवसर प्रदान किया।

फिर भी, प्रारम्भिक बौद्ध-साहित्य में स्त्रियों के प्रति समाज का दृष्टिकोण पूरी तरह समानतामूलक नहीं था। बहुधातुक सुत्त (मज्झिमनिकाय) में कहा गया है कि स्त्रियाँ बुद्ध नहीं बन सकतीं।[8] इसी प्रकार, जातक साहित्य में भी कई स्थानों पर स्त्रियों को चंचल, अविश्वसनीय और लोभिनी के रूप में चित्रित किया गया है। असातमन्त जातक में कहा गया है- "स्त्रियाँ चंचल होती हैं, वे कभी स्थिर नहीं रह सकतीं"[9]। यह दृष्टिकोण पितृसत्तात्मक मानसिकता का द्योतक है।

इस संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है कि ऋग्वैदिक काल में नारी को सम्मान और स्वतन्त्रता प्राप्त थी, उत्तरवैदिक काल में उसकी स्थिति अवनति की ओर बढ़ी और बुद्ध-काल में बुद्ध ने उनकी स्थिति में उत्थान किया। किन्तु जातक साहित्य में स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण पूर्णतः समानतामूलक न होकर द्वैध और विरोधाभासी रहा। यही पृष्ठभूमि हमें आगे जातक आख्यानों में स्त्रियों की स्थिति का गहन अध्ययन करने के लिए प्रेरित करती है।

जातक साहित्य में नारी

जातक साहित्य पालि काव्य-संस्कृति की अमूल्य निधि है। यह न केवल बुद्ध के पूर्वजन्मों की कथाओं का सङ्कलन है, बल्कि प्राचीन भारतीय समाज के विविध पक्षों- राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक-का भी सजीव चित्रण करता है। जातकों का मुख्य उद्देश्य बौद्ध धर्म की नैतिक शिक्षा का प्रसार करना था, किन्तु इन कथाओं में समाज के दैनिक जीवन का यथार्थ स्वरूप भी परिलक्षित होता है। विशेषकर स्त्रियों के सम्बन्ध में जातक कथाएँ तत्कालीन समाज की मानसिकता और पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण को स्पष्ट रूप से उजागर करती हैं।

जातक साहित्य का स्वरूप

'जातक' शब्द का अर्थ है- जन्म से सम्बन्धित अर्थात पूर्वजन्म से सम्बन्धित घटनाएं। बौद्ध परम्परा के अनुसार बुद्ध ने अपने पूर्वजन्मों में अनेक बार विभिन्न रूपों (योनियों) में जन्म लेकर दान, त्याग, करुणा, क्षमा, सत्य और धैर्य जैसे गुणों का अभ्यास किया था। पूर्वजन्म की इन्हीं कथाओं को जातक के रूप में सङ्कलित किया गया। जातक संग्रह में कुल 547 कथाएँ पाई जाती हैं।[10] ये कथाएँ बुद्ध की उपदेश-परम्परा के अङ्ग के रूप में प्रस्तुत की जाती हैं और साधारण जनमानस को नैतिक आचरण की ओर प्रेरित करती हैं।

जातक कथाओं में केवल धार्मिक उपदेश ही नहीं, बल्कि उस समय का सामाजिक जीवन भी झलकता है। इसमें किसानों, श्रमिकों, व्यापारियों, राजाओं, ब्राह्मणों, वेश्याओं और भिक्षुओं सभी का जीवन चित्रित है। स्त्रियाँ भी इन कथाओं में विविध भूमिकाओं में प्रकट होती हैं- कभी आदर्श पत्नी, कभी त्यागमयी माता, कभी छलपूर्ण नायिका और कभी वेश्या के रूप में।

जातकों में स्त्रियों के प्रकार

जातक साहित्य में स्त्री-चित्रण एकरूप नहीं है। विभिन्न कथाओं में स्त्रियाँ उनके सामाजिक स्थान, पारिवारिक भूमिका और नैतिक आचरण के आधार पर अनेक रूपों में उपस्थित होती हैं। अट्ठकथाओं के अनुसार स्त्रियों को मुख्यतः गृहस्थ स्त्रियाँ, राजमहल की स्त्रियाँ, वेश्याएँ/नर्तकियाँ तथा धार्मिक स्त्रियों के रूप में देखा जा सकता है।

गृहस्थ स्त्रियाँ (पत्नी, माता, बहन) : गृहस्थ स्त्री का चित्रण जातक साहित्य में सर्वाधिक मिलता है। कट्ठहारि जातक में लकड़ी चुनने वाली युवती एक साधारण गृहस्थ स्त्री है, जो राजा के मोह का शिकार बनती है और गर्भधारण के पश्चात् सामाजिक संरक्षण से वंचित रह जाती है। यहाँ गृहस्थ स्त्री की असुरक्षा और पितृसत्तात्मक व्यवस्था की कठोरता स्पष्ट होती है।[11] अण्डभूत जातक में कुंवारी कन्या का सतीत्व जुए के परिणाम को प्रभावित करता है। राजा द्वारा उसकी सतीत्व नष्ट करवाना और अंततः स्त्रियों को अधर्मिणी ठहराना यह दर्शाता है कि गृहस्थ स्त्री सामाजिक और नैतिक दृष्टि से पुरुषों के नियन्त्रण और आलोचना के अधीन होती है।[12] सेग्गु जातक में पिता द्वारा पुत्री के कौमार्य की परीक्षा करना यह दिखाता है कि गृहस्थ स्त्री की मूल्याङ्कन प्रक्रिया पितृसत्तात्मक सामाजिक दृष्टिकोण से निर्धारित होती है।[13] उच्छिट्ठभत्त जातक, गहपति जातक और समुग्ग जातक में गृहस्थ ब्राह्मणियों को दुराचार, छल और विश्वासघात की प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन कथाओं में स्त्री गृहस्थ जीवन के लिए संभावित खतरा मानी गई है, और परिवार में उसकी भूमिका केवल संरक्षण की नहीं बल्कि जटिल प्रभाव-सृजन की भी है।[14]

राजमहल की स्त्रियाँ : राजमहल की स्त्रियाँ जातक साहित्य में सत्ता, विलास और नैतिक पतन के सन्दर्भ में चित्रित होती हैं। बंधनमोक्ख जातक में रानी का दुराचार और झूठा आरोप राजमहल की स्त्री को नैतिक पतन की चरम सीमा पर प्रस्तुत करता है।[15] मुदुलक्खण जातक में रानी मृदुलक्षणा की बुद्धि और विवेक के माध्यम से तपस्वी को धर्ममार्ग पर लाना यह दर्शाता है कि राजमहल की स्त्री केवल विलास और कामना का प्रतीक नहीं, बल्कि समाज और धर्म की स्थिरता के लिए सकारात्मक भूमिका भी निभा सकती है। इसके विपरीत, दसण्णक जातक, मणिचोर जातक और सुच्चज जातक में रानियाँ चंचलता, लोभ

और पुरुष-विनाश का कारण बनती हैं। इन कथाओं में राजमहल की स्त्री सत्ता के पतन की सहकारिणी के रूप में प्रकट होती है।[16]

वेश्याएँ एवं नर्तकियाँ : यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से वेश्या-जीवन का विस्तृत वर्णन कम है, तथापि महापलोभन जातक में स्त्री राजकुमार और ऋषि दोनों को लुभाती है। इसी प्रकार, उदञ्चनि जातक और अलम्बुसा जातक में स्त्री का मोहक, कामोत्तेजक और तप-भङ्गकारी स्वरूप वेश्या-सदृश प्रतीत होता है। इन कथाओं में स्त्री पुरुष-संयम की परीक्षा के उपकरण के रूप में कार्य करती है।[17]

भिक्खुनियाँ और तपस्विनियाँ : धार्मिक स्त्रियों का चित्रण सीमित है, किन्तु सम्बुल जातक में स्त्री का अत्यन्त उज्ज्वल रूप सामने आता है। सम्बुला अपने शील-तेज से पति के कोढ़ को दूर कर देती है। यह जातक भिक्खुनी-सदृश स्त्री को आध्यात्मिक शक्ति और करुणा का प्रतीक बनाता है।[18]

स्त्रियों के गुण-दोष पर दृष्टि

जातक साहित्य स्त्री को केवल दोषों के रूप में नहीं, बल्कि गुणों और अवगुणों दोनों के साथ प्रस्तुत करता है। वानरिंद जातक में स्त्री को लोभी और हिंसक दिखाया गया है, जो पुरुष को अधर्म और विनाश की ओर प्रेरित करती है। इसी प्रकार, सुंसुमार जातक और कुणाल जातक में स्त्री क्रूर, कपटी और अधर्मिणी है। महापदुम जातक में सौतेली माता का पुत्र के साथ दुराचार करना स्त्री को भयावह और अधर्मिणी के रूप में प्रस्तुत करता है।[19] वहीं, मुदुलक्खण जातक, सुरुचि जातक और सम्बुल जातक में स्त्री बुद्धि, शील, त्याग और करुणा की मूर्ति के रूप में उभरती है। यहाँ स्त्री धर्म की रक्षिका और पुरुष के पतन को रोकने वाली शक्ति बनती है।[20]

इस प्रकार जातक साहित्य में स्त्री का मूल्याङ्कन द्वैधात्मक है; उसके गुण और दोष दोनों स्पष्ट हैं, यद्यपि दोषों का पक्ष अधिक प्रबल दिखाई देता है।

जातक कथाओं में स्त्री की बहुआयामी भूमिका

जातक कथाओं में स्त्री केवल सामाजिक भूमिका तक सीमित नहीं रहती, बल्कि विभिन्न सन्दर्भों में भिन्न-भिन्न रूप धारण करती है।

माता : सेग्गु जातक और महापदुम जातक में माता का रूप कठोर, सन्देहशील और कभी-कभी भयावह भी दिखाई देता है। सौतेली माता का पुत्र-वध का प्रयास पितृसत्तात्मक भय और नियन्त्रण को दर्शाता है।[21]

पत्नी : पत्नी के रूप में स्त्री कभी सम्बुला की भाँति पतिव्रता और त्यागमयी है (सम्बुल जातक), तो कभी उच्छिट्ठभत्त जातक और गहपति जातक की भाँति दुराचारिणी और छलपूर्ण (देखें- सन्दर्भ संख्या 26 एवं 27)।

वेश्या : अलम्बुसा जातक और महापलोभन जातक में स्त्री वेश्या-सदृश तपोभङ्ग की साधन बनती है। यहाँ उसका अस्तित्व पुरुष-संयम की परीक्षा के रूप में प्रयुक्त होता है।

धार्मिक नारी : सम्बुल जातक और आंशिक रूप से सुरुचि जातक में स्त्री धार्मिक चेतना, आत्मगौरव और शील की मूर्ति है। यह जातक साहित्य की सबसे सकारात्मक स्त्री-छवि प्रस्तुत करता है।

इन जातकों के आधार पर कहा जा सकता है कि जातक अट्ठकथा साहित्य में स्त्री की छवि बहुआयामी है। उसका मूल्याङ्कन मुख्यतः पुरुष-नैतिकता और समाजिक संरचना के सन्दर्भ में किया गया है। स्त्री आदर्श तभी मानी जाती है जब वह त्यागशील, पतिव्रता और धर्मपरायण हो; अन्यथा वह अविश्वास, अधर्म और विनाश की प्रेरक बन जाती है।

जातक कथाओं में स्त्रियों की भूमिका का विश्लेषण

जातक साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि स्त्री केवल गृहस्थ जीवन तक सीमित इकाई नहीं है, बल्कि सामाजिक, नैतिक, राजनीतिक और धार्मिक विमर्श की केन्द्रीय कड़ी है। विभिन्न जातकों में स्त्री माता, पत्नी, रानी, दासी, वेश्या, अप्सरा, तपस्विनी तथा साध्वी के रूप में उपस्थित होकर तत्कालीन समाज की पितृसत्तात्मक संरचना और स्त्री-दृष्टि को उद्घाटित करती है।

मातृत्व और स्त्री का बलिदान

कट्ठहारि जातक में वन में लकड़ी चुनने वाली साधारण युवती पर राजा ब्रह्मदत्त का आसक्त होना राजसत्ता की कामप्रधान प्रवृत्ति को उजागर करता है। गर्भधारण के उपरान्त स्त्री को सामाजिक और राजकीय संरक्षण न मिलना यह दर्शाता है कि स्त्री का महत्व पुत्र-उत्पादन तक सीमित है। पुत्र की स्वीकृति के साथ स्त्री का विस्मरण पितृसत्तात्मक उत्तराधिकार-बोध को स्पष्ट करता है।[22] सेग्गु जातक में पिता द्वारा पुत्री के कौमार्य की परीक्षा लेना यह दर्शाता है कि मातृत्व और स्त्री-देह दोनों ही सामाजिक नियन्त्रण के अधीन हैं। यहाँ स्त्री की नैतिकता पर निरन्तर सन्देह किया गया है, जो पितृसत्तात्मक निगरानी-मानसिकता को प्रतिबिम्बित करता है।[23] महापदुम जातक में सौतेली माता का पुत्र के प्रति कामभाव और हत्या का प्रयास मातृत्व को भयावह और विकृत रूप में प्रस्तुत करता है। यह जातक पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री-मातृत्व से जुड़े गहरे भय को प्रकट करता है।[24]

पत्नी एवं पतिव्रता स्त्रियाँ

सम्बुल जातक में सम्बुला का शील-तेज, सेवा-भाव और करुणा उसके पति के कोढ़ को दूर कर देती है। यहाँ पत्नी पतिव्रत, त्याग और आध्यात्मिक शक्ति की मूर्ति के रूप में उभरती है, जो जातक साहित्य की सर्वाधिक सकारात्मक स्त्री-छवि प्रस्तुत करती है।[25] इसके विपरीत उच्छिट्ठभत्त जातक में ब्राह्मणी द्वारा पति के विश्वास का दुरुपयोग कर दुराचार करना पत्नी-रूप में स्त्री को नैतिक पतन का प्रतीक बनाता है।[26] गहपति जातक में ब्राह्मणी और ग्राममुखिया का षड्यंत्र पत्नी-चरित्र को छल और अधर्म से जोड़ देता है।[27] रुहक जातक में स्त्री का वाचिक आचरण पारिवारिक विघटन का कारण बनता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि पत्नी का आचरण परिवार की स्थिरता से सीधे जुड़ा माना गया है।[28]

वेश्याएँ एवं नर्तकियाँ

उदञ्चनि जातक में स्त्री द्वारा बोधिसत्त्व को लुभाना यह दर्शाता है कि स्त्री-सौन्दर्य तप और संयम को भी विचलित कर सकता है। यहाँ स्त्री कामविकार की प्रतीक बनती है।[29] महापलोभन जातक में स्त्री द्वारा राजकुमार और ऋषि दोनों को आकृष्ट करना स्त्री को 'महलोभ' का कारण बनाता है।[30] अलम्बुसा जातक में अप्सरा द्वारा तप-भङ्ग स्त्री को देव-योजना के उपकरण के रूप में प्रस्तुत करता है।[31] नालिनिका जातक में राजा द्वारा पुत्री को तप-भङ्ग के लिए भेजना स्त्री की स्वायत्तता के पूर्ण अभाव को उजागर करता है।[32]

स्त्रियों की नैतिक एवं अनैतिक छवियाँ

मुदुलक्खण जातक में रानी मृदुलक्षणा तपस्वी को धर्ममार्ग पर लौटाती है। यहाँ स्त्री विवेक और सुधार की शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित होती है।[33] सुरुचि जातक में स्त्री आत्मगौरव, शील और संयम की मूर्ति है, जो सन्तुलित और सकारात्मक स्त्री-दृष्टि प्रस्तुत करता है।[34] इसके विपरीत वानरिंद जातक में स्त्री लोभ और हिंसा की प्रेरक बनती है।[35] सुंसुमार जातक में स्त्री की इच्छा को क्रूर और विवेकहीन बताया गया है।[36] कुणाल जातक में स्त्री-दोषों का विस्तार स्त्री-विरोधी दृष्टि का चरम रूप प्रस्तुत करता है।[37]

स्त्री-चतुराई एवं कुटिलता

चुल्लपदुम जातक में स्त्री की कृतघ्नता को अत्यन्त नकारात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है।[38] मणिचोर जातक में स्त्री-मोह राजा को अधर्म की ओर ले जाता है।[39] समुग्ग जातक में कठोर निगरानी के बावजूद स्त्री का दुराचार यह दर्शाता है कि समाज स्त्री-स्वभाव को नियन्त्रण से परे मानता था।[40] इन जातकों के समग्र अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जातक अट्ठकथा साहित्य में स्त्री की छवि बहुआयामी है, किन्तु उसका मूल्याङ्कन मुख्यतः पुरुष-नैतिकता और पितृसत्तात्मक संरचना के सन्दर्भ में किया गया है। स्त्री तभी आदर्श मानी जाती है जब वह त्यागशील, पतिव्रता और धर्मपरायण हो; अन्यथा वही स्त्री अविश्वास, अधर्म और विनाश की कारक बना दी जाती है।

जातक साहित्य में नारी के प्रति दृष्टिकोण का आलोचनात्मक मूल्याङ्कन

जातक साहित्य नारी के सन्दर्भ में एक जटिल और द्वन्द्वात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। इसमें नारी कभी करुणा, शील और धर्म की मूर्त प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित होती है, तो कभी उसे काम, छल, कृतघ्नता और अधर्म की प्रेरक शक्ति के रूप में चित्रित किया जाता है। यह द्वैधता आकस्मिक नहीं, बल्कि तत्कालीन पितृसत्तात्मक सामाजिक-धार्मिक संरचना की उपज है। निम्नलिखित विवेचन में इस दृष्टिकोण को चार स्तरों पर क्रमशः विश्लेषित किया जा रहा है।

सकारात्मक पहलू : नारी धर्म, करुणा और विवेक की शक्ति के रूप में

यद्यपि जातक साहित्य में नारी के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि प्रबल है, तथापि कुछ जातक ऐसे भी हैं जहाँ स्त्री को नैतिक उत्थान, विवेक और आध्यात्मिक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मुदुलक्खण जातक में रानी मृदुलक्षणा का चरित्र विशेष उल्लेखनीय है।[41] यहाँ वह केवल सौन्दर्य या भोग का विषय नहीं, बल्कि विवेकशील और धर्मपरायण नारी के रूप में उभरती है। तपस्वी के पथच्युत होने पर वह अपने बुद्धिबल और संयम से उसे पुनः धर्ममार्ग पर लाती है। यह जातक इस धारणा को खण्डित करता है कि स्त्री सदैव तप-भङ्ग की कारण होती है; यहाँ वह तप और नीति की संरक्षिका बनती है। इसी प्रकार सम्बुल जातक में सम्बुला का चरित्र जातक साहित्य की सर्वाधिक सकारात्मक स्त्री-छवियों में से एक है। पति के कोढ़ से ग्रस्त हो जाने पर भी उसका त्याग, सेवा और शील-तेज अक्षुण्ण रहता है। उसके आध्यात्मिक बल से पति रोग-मुक्त होता है।[42] यहाँ नारी को पतिव्रता धर्म, करुणा और आध्यात्मिक शक्ति की मूर्त अभिव्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। सुरुचि जातक में नारी स्वयं अपने सद्गुणों शील, संयम, सत्य और आत्मनियन्त्रण का आत्मविश्वासपूर्वक वर्णन करती है।[43] यह आत्मगौरव जातक साहित्य में दुर्लभ है और यह दर्शाता है कि स्त्री केवल पुरुष-दृष्टि से परिभाषित नहीं, बल्कि स्वयं भी अपनी नैतिक सत्ता को पहचानती है। इन जातकों से यह स्पष्ट होता है कि जातक परम्परा में नारी को पूर्णतः नकारात्मक नहीं माना गया, बल्कि कुछ सन्दर्भों में उसे धर्म और नैतिकता की केन्द्रीय शक्ति के रूप में भी स्वीकार किया गया।

नकारात्मक पहलू : नारी को काम, छल और विनाश की प्रेरक के रूप में प्रस्तुतिकरण

जातक साहित्य का बड़ा भाग नारी को नैतिक पतन और सामाजिक संकट के स्रोत के रूप में चित्रित करता है। कट्ठहारि जातक में राजा ब्रह्मदत्त का वन में लकड़ी चुनने वाली युवती पर आसक्त होना राजसत्ता की कामप्रधान प्रवृत्ति को उजागर करता है।[44] स्त्री यहाँ आकर्षण की वस्तु है, किन्तु गर्भधारण के पश्चात् उसे अस्वीकार कर दिया जाता है। अंगूठी पहचान का प्रमाण होते हुए भी राजा का इनकार यह दर्शाता है कि पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री का मूल्य मातृत्व से नहीं, बल्कि पुत्र-उत्पादन से जुड़ा है। वानरिन्द जातक में मगरमच्छ की पत्नी की इच्छा वानर का हृदय प्राप्त करने की है। यह इच्छा पुरुष को हिंसा और अधर्म की ओर प्रेरित करती है। यहाँ स्त्री की कामना को विवेक-विनाशक बताया गया है, जबकि वानर की बुद्धि नैतिक चेतना का प्रतीक बनती है।[45] इसी प्रकार सुंसुमार जातक में भी मगरमच्छ की पत्नी की अतृप्त और क्रूर इच्छा स्त्री-स्वभाव को हिंसक और

विवेकहीन दर्शाती है। स्त्री की आकांक्षा यहाँ सीधे-सीधे हत्या से जुड़ जाती है।[46] तक्क जातक में बोधिसत्त्व द्वारा बचाई गई स्त्री ही उनके शील को नष्ट करने का प्रयास करती है। इस कृतघ्नता के माध्यम से स्त्री को पुरुष की साधना और नैतिकता के लिए घातक बताया गया है।[47] चुल्लपदुम जातक[48] और मुदुपाणी जातक[49] में स्त्री का विश्वासघात केन्द्रीय विषय है। पुरुष का अति-विश्वास स्त्री द्वारा छल में परिवर्तित हो जाता है, जिससे यह सन्देश दिया गया है कि स्त्री पर भरोसा विनाशकारी हो सकता है। इस नकारात्मक परम्परा का चरम रूप कुणाल जातक[50] में दिखाई देता है, जहाँ स्त्रियों के दोषों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। यह जातक वस्तुतः स्त्री-विरोधी दृष्टिकोण का वैचारिक सङ्कलन बन जाता है।

पितृसत्तात्मक मानसिकता और उसका प्रभाव

जातक साहित्य में नारी-चित्रण पर पितृसत्तात्मक सोच का गहरा प्रभाव स्पष्ट है। अण्डभूत जातक में राजा और पुरोहित द्वारा कुंवारी कन्या के सतीत्व को जुए का साधन बनाना स्त्री-देह को जादुई और साधनात्मक दृष्टि से देखने का उदाहरण है। अंततः स्त्री को ही अधर्मिणी ठहराया जाता है, जबकि वह पीड़िता होती है।[51] सेग्गु जातक में पिता द्वारा पुत्री के कौमार्य की परीक्षा लेना यह दर्शाता है कि स्त्री का मूल्य उसकी शारीरिक शुद्धता से आँका जाता था। यहाँ स्त्री की नैतिकता सदा सन्देह के घेरे में रहती है।[52] साधुसील जातक में कन्याओं की विवाह-योग्यता पर चर्चा यह स्पष्ट करती है कि स्त्री को सामाजिक दायित्व और नैतिक अनुशासन के कठोर मानदण्डों में बाँध दिया गया था। इन कथाओं से यह स्पष्ट होता है कि जातक साहित्य स्त्री को स्वतन्त्र नैतिक इकाई न मानकर नियन्त्रण-योग्य वस्तु के रूप में देखता है।[53]

द्वन्द्वात्मकता के कारण (विस्तारित एवं संदर्भित विवेचन)

जातक साहित्य में नारी के प्रति जो द्वन्द्वात्मक दृष्टिकोण दिखाई देता है - एक ओर आदर्श, करुणामयी, शीलवती स्त्री और दूसरी ओर चंचल, कपटी, कामोत्तेजक तथा अधर्म की प्रेरक नारी - वह आकस्मिक या कथात्मक मात्र नहीं है। इसके पीछे तत्कालीन समाज, धर्म और पुरुष-प्रधान मनोवृत्ति के गहरे संरचनात्मक कारण निहित हैं। इस द्वन्द्वात्मकता को निम्नलिखित उपकारणों के माध्यम से समझा जा सकता है -

सामाजिक कारण : पितृसत्तात्मक व्यवस्था और स्त्री की पराश्रित स्थिति

जातक साहित्य जिस सामाजिक संरचना में विकसित हुआ, वह मूलतः पितृसत्तात्मक थी। इस व्यवस्था में स्त्री की पहचान स्वतन्त्र व्यक्ति के रूप में नहीं, बल्कि पिता, पति अथवा पुत्र के सन्दर्भ में निर्धारित होती थी। कट्ठहारि जातक इसका सशक्त उदाहरण है, जहाँ वनवासी युवती राजा की कामना की पूर्ति के बाद गर्भवती होने पर अस्वीकार कर दी जाती है, जबकि पुत्र को उत्तराधिकारी के रूप में स्वीकार किया जाता है। यह स्पष्ट करता है कि समाज में स्त्री का मूल्य उसकी मातृत्व-भूमिका से नहीं, बल्कि पुरुष-संतान-उत्पादन से जुड़ा था।[54] इसी प्रकार सुजाता जातक में माली की कन्या का रानी बनना स्त्री के सामाजिक उत्थान को पुरुष की स्वीकृति पर निर्भर दिखाता है। यहाँ स्त्री का उत्कर्ष उसके गुणों से नहीं, बल्कि राजा की इच्छा से संभव होता है।[55] इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि स्त्री की सामाजिक स्थिति अस्थिर और पराश्रित थी, जिससे उसके प्रति अविश्वास और नियन्त्रण की भावना विकसित हुई।

धार्मिक कारण : संन्यास-केन्द्रित दृष्टि और स्त्री को बाधक मानने की प्रवृत्ति

बौद्ध परम्परा में यद्यपि करुणा और समता का आदर्श विद्यमान है, तथापि जातक साहित्य में संन्यास और तप को सर्वोच्च मानते हुए स्त्री-सान्निध्य को अनेक बार बाधक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। असातमन्त जातक में ब्राह्मण कुमार द्वारा स्त्रियों के दुर्गुणों का ज्ञान प्राप्त कर प्रव्रज्या ग्रहण करना यह दर्शाता है कि स्त्री-संपर्क को आध्यात्मिक पतन का कारण माना गया। यहाँ नारी स्वयं अधर्मी नहीं, किन्तु उसे धर्ममार्ग की बाधा के रूप में देखा गया है।[56] इसी क्रम में उदञ्चनि जातक और अलम्बुसा जातक में स्त्री या अप्सरा द्वारा तपस्वी की साधना भङ्ग करना यह धारणा पुष्ट करता है कि स्त्री-सौंदर्य तप और संयम तक को विचलित कर सकता है। यहाँ दोष प्रत्यक्षतः स्त्री के चरित्र पर न

होकर उसकी उपस्थिति पर केंद्रित है।[57] इस धार्मिक दृष्टि के कारण स्त्री एक आवश्यक सामाजिक इकाई होते हुए भी संन्यास-मार्ग के लिए 'विघ्न' के रूप में स्थापित हो गई।

मनोवैज्ञानिक कारण : पुरुष-भय, असुरक्षा और स्त्री की चतुराई के प्रति सन्देह

जातक साहित्य में स्त्री के प्रति अविश्वास केवल सामाजिक या धार्मिक कारणों से ही नहीं, बल्कि गहरे मनोवैज्ञानिक भय से भी उत्पन्न हुआ प्रतीत होता है। स्त्री की चतुराई, वाक्पटुता और सौंदर्य को पुरुष-प्रधान समाज ने अपने नैतिक और सामाजिक नियन्त्रण के लिए चुनौती के रूप में देखा। दुराजान जातक में "स्त्री-स्वभाव दुर्ज्ञेय है" जैसा संक्षिप्त किन्तु तीखा कथन इसी मानसिकता का द्योतक है। यह कथन व्यक्तिगत अनुभव नहीं, बल्कि सामूहिक पुरुष-चेतना का सामान्यीकरण है।[58] इसी प्रकार मुदुपाणी जातक और चुल्लपदुम जातक में स्त्री द्वारा विश्वासघात को यह स्थापित करने के लिए प्रयुक्त किया गया है कि स्त्री पर अति-विश्वास पुरुष के लिए विनाशकारी हो सकता है। यह पुरुष-मन में निहित असुरक्षा और नियन्त्रण की इच्छा को उजागर करता है।[59]

नैतिक शिक्षण की पद्धति : स्त्री को प्रतीक बनाकर उपदेश

जातक साहित्य मूलतः नैतिक शिक्षण का साहित्य है। अनेक कथाओं में स्त्री को स्वतन्त्र पात्र न बनाकर नैतिक उपदेश का प्रतीक बना दिया गया है। वानरिन्द जातक और सुंसुमार जातक में स्त्री की इच्छा को हिंसा और अधर्म से जोड़कर यह सन्देश दिया गया है कि कामना विवेक को नष्ट कर देती है। यहाँ स्त्री व्यक्ति नहीं, बल्कि 'काम' की प्रतीक बन जाती है।[60] इसी प्रवृत्ति का चरम रूप कुणाल जातक में दिखाई देता है, जहाँ स्त्रियों के दोषों का क्रमबद्ध वर्णन कर उन्हें नैतिक पतन का समेकित प्रतीक बना दिया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि स्त्री-विरोधी छवियाँ कई बार कथात्मक आवश्यकता से अधिक नैतिक उपदेश की रणनीति थीं।[61]

अपवादस्वरूप सकारात्मक स्त्रियाँ और आदर्शीकरण की समस्या

जहाँ एक ओर अधिकांश जातक स्त्री को नकारात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं, वहीं सम्बुल जातक, मुदुलक्खण जातक और सुरुचि जातक में स्त्री को अत्यन्त आदर्श रूप में दिखाया गया है। किन्तु यह आदर्शीकरण भी समस्या-मुक्त नहीं है। इन कथाओं में स्त्री की स्वीकृति उसके त्याग, पतिव्रत और आत्म-निग्रह पर निर्भर है। अर्थात् स्त्री तभी प्रशंसनीय है जब वह सामाजिक अपेक्षाओं के अनुरूप स्वयं को पूर्णतः समर्पित कर दे।[62]

इस प्रकार जातक साहित्य में नारी के प्रति द्वन्द्वात्मक दृष्टिकोण सामाजिक संरचना, धार्मिक मान्यताओं, पुरुष-प्रधान मनोवृत्ति और नैतिक शिक्षण की शैली - इन सभी के संयुक्त प्रभाव से निर्मित हुआ है। नारी न तो पूर्णतः निन्दनीय है, न ही स्वतन्त्र रूप से सम्मानित; उसका मूल्याङ्कन प्रायः पुरुष-केंद्रित मानदण्डों से किया गया है। यही द्वन्द्व जातक साहित्य को ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण और आधुनिक नारी-विमर्श के लिए अत्यन्त प्रासङ्गिक बनाता है।

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि जातक आख्यानों में स्त्रियों की भूमिका न तो एकाङ्गी है और न ही सरल। जातक साहित्य स्त्री को कभी करुणा, शील, त्याग और आध्यात्मिक शक्ति की मूर्ति के रूप में प्रतिष्ठित करता है, तो कभी उसे काम, छल, कृतघ्नता और अधर्म की प्रेरक के रूप में चित्रित करता है। यह द्वैधात्मक दृष्टिकोण तत्कालीन समाज की पितृसत्तात्मक संरचना, धार्मिक संन्यास-केन्द्रित मूल्यबोध और पुरुष-प्रधान मानसिकता का स्वाभाविक परिणाम प्रतीत होता है।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि जातक साहित्य में स्त्री का मूल्याङ्कन प्रायः पुरुष-नैतिकता के मानदण्डों पर किया गया है। स्त्री तभी आदर्श मानी जाती है जब वह पतिव्रता, त्यागमयी, शीलवती और आत्मसंयमी हो; जबकि इन सामाजिक अपेक्षाओं से विचलन करने पर वही स्त्री अविश्वास, भय और विनाश की प्रतीक बना दी जाती है। इस सन्दर्भ में सम्बुला, मृदुलक्षणा और सुरुचि जैसी स्त्रियाँ आदर्शीकरण का उदाहरण हैं, परन्तु उनका यह आदर्श भी स्त्री की स्वतन्त्र सत्ता के बजाय उसके आत्म-त्याग पर आधारित है।

नकारात्मक स्त्री-छवियों-जैसे वानरिंद, सुंसुमार, कुणाल, चुल्लपदुम और मुदुपाणी जातकों में चित्रित स्त्रियाँ-के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि स्त्री को अनेक बार नैतिक उपदेश का प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया गया है। यहाँ स्त्री एक स्वतन्त्र सामाजिक

व्यक्ति न होकर 'काम', 'लोभ' अथवा 'माया' का प्रतीक बन जाती है, जिससे पुरुष-संयम और नैतिकता की परीक्षा ली जाती है। इस प्रक्रिया में स्त्री की मानवीय जटिलता और सामाजिक विवशताएँ प्रायः उपेक्षित रह जाती हैं।

समग्र रूप से देखा जाए तो जातक साहित्य नारी की वास्तविक सामाजिक स्थिति का निष्पक्ष चित्रण करने के बजाय पुरुष-प्रधान समाज की आशंकाओं, नियन्त्रण की प्रवृत्तियों और नैतिक शिक्षण की रणनीतियों को अधिक मुखर रूप से प्रस्तुत करता है। फिर भी, यही द्वन्द और विरोधाभास जातक साहित्य को ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बनाते हैं। ये कथाएँ न केवल प्राचीन भारतीय समाज की स्त्री-दृष्टि को समझने में सहायक हैं, बल्कि आधुनिक नारी-विमर्श के लिए भी एक आलोचनात्मक आधार प्रदान करती हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि जातक आख्यानों में स्त्रियाँ न तो पूर्णतः निन्दनीय हैं और न ही पूर्णतः स्वतन्त्र रूप से सम्मानित। वे एक ऐसे सामाजिक-सांस्कृतिक विमर्श का हिस्सा हैं, जहाँ उनकी पहचान पुरुष-केन्द्रित मूल्यों के भीतर निर्धारित होती है। इसी कारण जातक साहित्य स्त्री-अध्ययन के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण, यद्यपि आलोचनात्मक, स्रोत के रूप में स्थापित होता है।

References/सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. जातक अट्ठकथा. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द (अनु.). भाग-1, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2006.
2. जातक अट्ठकथा. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द (अनु.). भाग-2, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2006.
3. जातक अट्ठकथा. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द (अनु.). भाग-3, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2007.
4. जातक अट्ठकथा. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द (अनु.). भाग-4 हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2009.
5. जातक अट्ठकथा. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द (अनु.). भाग-5, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2011.
6. थेरीगाथा. उपाध्याय, भरत सिंह (अनु.), गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2010.
7. मज्झिमनिकायपालि. द्वारिकादासशास्त्री, स्वामी (सं.), भाग-3, बौद्धभारती, वाराणसी, 2011.
8. मनुस्मृतिः द लॉज़ ऑफ़ मनु. बुह्लर, जॉर्ज (अनु.), क्लेरेन्डन प्रेस, ऑक्सफ़ोर्ड, 1886.
9. विनयपिटक. द्वारिकादासशास्त्री, स्वामी (सं.), बौद्धभारती, वाराणसी, 2008.
10. अल्टेकर, ए. एस. पोज़ीशन ऑफ़ वुमेन इन हिन्दू सिविलाइज़ेशन. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1956.
11. काणे, पं. वी. एस. हिस्ट्री ऑफ़ धर्मशास्त्र, खण्ड 2, भाग-1, भण्डारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट, पूना, 1941.
12. दास गुप्ता, मउ. वुमेन सीअर्स ऑफ़ द ऋग्वेद. डी. के. प्रिन्टवर्ल्ड प्रा. लि., नई दिल्ली, 2017.
13. Sivasai, C. V. (2024). The position of women during the pre-Buddhist period. Bodhi-Path, 27(2), 39–47.
14. Singhal, S. (2025). The role of women in ancient Indian history: A re-evaluation. Bodhi-Path, 29, 5–10.
15. Baudh, S. (2025). Prominence of Jataka tales in Indian history. Bodhi-Path, 29, 1–4.

EndNotes

श्रीनिवास राव. "पोज़ीशन ऑफ़ वुमेन इन द ऋग वेद." श्रीनिवास राव्स ब्लॉग, 4 सितम्बर 2012, https://sreenivasaraos.com/2012/09/04/rig-veda-position-of-women-22/, 12-12-2025.

[1] दास गुप्ता, वुमेन सीअर्स ऑफ़ द ऋग्वेद, पृ. 153-192.; राव, "पोज़ीशन ऑफ़ वुमेन इन द ऋग वेद", https://sreenivasaraos.com/2012/09/04/rig-veda-position-of-women-22/. 12-12-2025.

[2] अल्टेकर, पोज़ीशन ऑफ़ वुमेन इन हिन्दू सिविलाइज़ेशन, पृ. 15-18.

[3] काणे, हिस्ट्री ऑफ़ धर्मशास्त्र, खंड-2, भाग-1, पृ. 519-535.
[4] मनुस्मृति. बुह्लर (अनु.),अध्याय-9, श्लोक-3, पृ. 320-321.
[5] वही, अध्याय-3, श्लोक-56, पृ. 58-60.
[6] विनयपिटक, द्वारिकादासशास्त्री (सं.), पृ. 470.
[7] थेरीगाथा, उपाध्याय (अनु.), पृ. 7-120.
[8] मज्झिमनिकायपालि. द्वारिकादासशास्त्री (सं.), भाग- 3. पृ. 1150.
[9] जातक अटठ्कथा, कौसल्यायन, भाग-1, पृ. 372-377.
[10] वही, भाग 1-7.
[11] जातक अट्ठकथा, कौसल्यायन, भाग-1, पृ. 191-195.
[12] वही, भाग-1, पृ. 377-384.
[13] वही, भाग-3, पृ. 340-341.
[14] वही, भाग-2, पृ. 326-328; भाग-4, पृ. 214-219.
[15] वही, भाग-2, पृ. 37-42.
[16] वही, भाग-2, पृ. 272-278; भाग-3, पृ. 273-278; भाग-4, पृ. 1-6.
[17] वही, भाग-2, पृ. 8-10; भाग-5, 2011, पृ. 158-164; 367-384.
[18] वही, भाग-5, पृ. 294-306.
[19] वही, भाग-1, पृ. 364-367; भाग-2, पृ. 316-318; भाग-4, पृ. 451-462; भाग-5, पृ. 180-235.
[20] वही, भाग-5, पृ. 294-306; भाग-2, पृ. 489.
[21] जातक अट्ठकथा, कौसल्यायन, भाग-3, पृ. 340-341; भाग-4, पृ. 451-462.
[22] वही, भाग-1, पृ. 191-195.
[23] वही, भाग-2, पृ. 340-341.
[24] जातक अट्ठकथा, कौसल्यायन, भाग-4, पृ. 451-462.
[25] वही, भाग-5, पृ. 294-306.
[26] वही, भाग-2, पृ. 326-328.
[27] वही, 288-291.
[28] वही, 263-266.
[29] वही, पृ. 8-10.
[30] वही, भाग-5, पृ. 158-164.
[31] वही, पृ. 367-384.
[32] वही, पृ. 417-434.
[33] वही, भाग-1, पृ. 392-397.
[34] वही, भाग-4, पृ. 597-610.
[35] वही, भाग-1, पृ. 364-367.
[36] वही, भाग-2, पृ. 316-318.
[37] वही, भाग-5, पृ. 180-235.
[38] जातक अट्ठकथा, कौसल्यायन, भाग-2, पृ. 266-272.
[39] वही, पृ. 272-276.

[40] वही, भाग-4, पृ. 214-219.
[41] वही, भाग-1, पृ. 485-489.
[42] वही, भाग-5, पृ. 120-130.
[43] वही, भाग-4, पृ. 310-318.
[44] जातक अट्ठकथा, कौसल्यायन, भाग-1, पृ. 191-195.
[45] वही, पृ. 430-434.
[46] वही, भाग-2, पृ. 215-220.
[47] वही, भाग-1, पृ. 466-470.
[48] वही, भाग-2, पृ. 150-155.
[49] वही, भाग-3, पृ. 90-95.
[50] वही, भाग-5, पृ. 260-275.
[51] वही, भाग-1, पृ. 460-465.
[52] वही, भाग-2, पृ. 275-279.
[53] वही, पृ. 190-194.
[54] जातक अट्ठकथा, कौसल्यायन, भाग-1, पृ. 191-195.
[55] वही, भाग-3, पृ. 217-221.
[56] वही, भाग-1, पृ. 372-377.
[57] वही, भाग-2, पृ. 8-10; भाग-5, पृ. 367-384.
[58] वही, भाग-1, पृ. 388-391.
[59] वही, भाग-2, पृ. 266-272; भाग-3, पृ. 56-60.
[60] वही, भाग-1, पृ. 364-367; भाग-2, पृ. 316-318.
[61] जातक अट्ठकथा, कौसल्यायन, भाग-5, पृ. 180-235.
[62] वही, भाग-1, पृ. 392-397; भाग-5, पृ. 294-306; भाग-4, पृ. 597-610.